16 वर्ष (2006-2021)

अध्यायवार मुख्य परीक्षा हल प्रश्न–पत्र

हिन्दी साहित्य

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए समान रूप से उपयोगी

नीचे दिए गए कूपन कोड का उपयोग कर 5 नि:शुल्क ऑनलाइन टेस्ट (प्रारंभिक और मुख्य परीक्षाओं हेतु) का लाभ उठाएं। इसके अलावा @chronicleindia.in से किसी भी पुस्तक/पत्रिका व सामग्री की खरीद पर ₹50/- की छूट प्राप्त करें।

स्क्रैच कर कूपन कोड प्राप्त करें

संपादक: एन. एन. ओझा
(सिविल सेवा परीक्षाओं के मार्गदर्शन में 30 से अधिक वर्षों का अनुभव)
लेखन एवं प्रस्तुति: क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तर रूप में

बुक कोडः 287

संस्करण 2022

मूल्यः ₹ 405/-

ISBN : 978-81-956401-4-0

प्रकाशक
क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.

कॉरपोरेट ऑफिसः
ए-27डी, सेक्टर-16, नोएडा-201301,
फोन नं: 0120-2514610-12,
E-mail : info@chronicleindia.in

संपर्क सूत्रः
संपादकीय : 9582948817, editor@chronicleindia.in
ऑनलाइन सेल सहयोगः 9582219047, onlinesale@chronicleindia.in
तकनीकी सहयोग : 9953007634, Email Id: it@chronicleindia.in
विज्ञापन : 9953007627, 9891601320, advt@chronicleindia.in
सदस्यता : 9953007629, 9953007628, Subscription@chronicleindia.in
प्रिंट संस्करण सेल : 9953007630, 9953007631, circulation@chronicleindia.in

सर्वाधिकार सुरक्षित © क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.: इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से- इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

पुस्तक में प्रकाशित सामग्री उपरोक्त विषय पर प्रकाशित पुस्तकों/जर्नल/रिपोर्ट/ऑनलाइन कंटेंट आदि से संकलित है। लेखक/संकलनकर्ता/प्रकाशक, प्रकाशित सामग्री की मूल लेखन का दावा नहीं करता। प्रकाशित सामग्री को पूर्णतः त्रुटि रहित बनाने का प्रयास किया गया है, फिर भी किसी भी प्रकार के त्रुटि के लिए क्षतिपूर्ति का दावा प्रकाशक/लेखक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। शंका की स्थिति में पाठक स्वयं भारत सरकार के दस्तावेज व अन्य स्त्रोतों के माध्यम से जांच कर सकते हैं
सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।, **पंजीकृत कार्यालयः** एच-31, जी.पी. एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110016, **मुद्रकः** एस के एंटरप्राइजेज, मुंडका, उद्योग नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली - 110041

पुस्तक के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित विगत 16 वर्षों (2006-2021) के प्रश्नों का अध्यायवार हल

प्रश्नों को हल करने की प्रकृतिः पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में दिया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हो, तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हो। पुस्तक में प्रश्नों के इतर भी विशिष्ट जानकारी को उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि छात्र इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।

पुस्तक का उपयोग कैसे करें?: इस पुस्तक का उपयोग छात्र अपने उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृति व प्रकृति को समझने के लिये कर सकते हैं। किसी भी परीक्षा के विगत वर्षो के प्रश्न इसमें सबसे लाभदायक होते हैं। अभ्यर्थी पुस्तक में दी गई सामग्री का इस्तेमाल बिंदुवार, निश्चित शब्द सीमा का पालन, उप-शीर्षक, एवं आरेख, आदि का प्रयोग अपने उत्तर लेखन शैली के अभ्यास हेतु आधुनिक परिपेक्ष में कर सकते हैं। पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर उसके सम्बंधित वर्ष के अनुसार ही दिया गया है।

हिंदी साहित्यः एक वैकल्पिक विषय के रूप मेंः सिविल सेवा परीक्षा के वैकल्पिक विषयों की सूची में भी हिन्दी साहित्य अभ्यर्थियों का एक पसंदीदा विषय है। हिंदी माध्यम के छात्रों का इस विषय की ओर सहज रुझान रहा है। इस विषय की लोकप्रियता का कारण इसका रुचिकर होने के साथ-साथ अंकदायी होना भी है। इसका प्रमुख कारण है- अंकदायी विषय, हिन्दी माध्यम के लिए सुरक्षित विषय, सहज व रुचिकर, 3-4 माह में तैयारी संभव, करेंट अफेयर्स से अपडेट करने की जरूरत नहीं, निश्चित और स्पष्ट पाठ्यक्रम, लेखन कौशल का विकास। इसके पाठयक्रम को इस प्रकार से विभाजित कर तैयार किया गया है, कि विषय का चयनात्मक अध्ययन किया जा सके।

यह पुस्तक छात्रों को संघ लोक सेवा आयोग के मुख्य परीक्षा के अलावा राज्य लोक सेवा आयोगों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं झारखण्ड) के बदले हुए पाठ्यक्रम में आयोजित होने वाले सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के हिंदी साहित्य के प्रश्न पत्र में उपयोगी साबित होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र 2006-2021

प्रथम प्रश्न-पत्र

खण्ड- 'क'

हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास

- अपभ्रंश, अवहट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप..... 1
- मध्यकाल में ब्रज और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास..... 13
- सिद्ध-नाथ साहित्य, खुसरो, संत साहित्य, रहीम आदि कवियों और दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप.....27
- उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली और नागरी लिपि का विकास..... 46
- हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का मानकीकरण..... 56
- भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास.....62
- हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास..... 81
- नागरी लिपि की प्रमुख विशेषताएं और उसके सुधार के प्रयास तथा मानक हिन्दी का स्वरूप..... 94
- मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना..... 100

खण्ड- 'ख'

हिन्दी साहित्य का इतिहास

- हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा..... 112
- हिन्दी साहित्य के प्रमुख काल..... 118
- कथा साहित्य..... 164
- नाटक और रंगमंच..... 186
- आलोचना..... 205
- हिन्दी गद्य की अन्य विधाएं..... 212

द्वितीय प्रश्न-पत्र

खण्ड- 'क' (पद्य साहित्य)

- कबीर..... 229
- सूरदास..... 240
- तुलसीदास..... 251
- जायसी..... 263
- बिहारी..... 272
- मैथिली शरण गुप्त..... 281
- जयशंकर प्रसाद..... 287
- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'..... 297
- रामधारी सिंह दिनकर..... 306
- अज्ञेय..... 312
- मुक्तिबोध..... 318
- नागार्जुन..... 331

खण्ड- 'ख' (गद्य साहित्य)

- भारतेन्दु..... 339
- मोहन राकेश..... 352
- रामचंद्र शुक्ल..... 361
- निबंध निलय..... 372
- प्रेमचंद..... 379
- जयशंकर प्रसाद..... 394
- यशपाल..... 402
- फणीश्वर नाथ रेणु..... 409
- मन्नू भंडारी..... 417
- एक दुनिया समानान्तर..... 422

◆❖◆❖◆❖◆

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खण्ड `क' (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

अपभ्रंश, अवहट्ठ और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप

प्र. अवहट्ठ की व्याकरणिक संरचना का स्वरूप
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: अवहट्ठ 'अपभ्रंश' शब्द का विकृत रूप है जिसे अपभ्रंश का अपभ्रंश या परवर्ती अपभ्रंश कहा जाता है। संस्कृत के सरलीकरण की जो प्रक्रिया पाली से प्रारंभ हुई थी वह अपभ्रंश में आकर हिंदी के समीप आने लगी तथा अवहट्ठ तक आकर इसके विकास की गति तीव्र हो गई। यह आधुनिक भारतीय भाषाओं एवं अपभ्रंश के बीच की संक्रमणकालीन भाषा है तथा इसका कालखंड 900 ई.-1100 ई. तक माना जाता है।

- जहां तक इसके व्याकरणिक स्वरूप की बात है तो इसे निम्न भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है।

व्याकरणिक तत्व

संज्ञा तथा कारक व्यवस्था | लिंग संरचना | वचन व्यवस्था | सर्वनाम व्यवस्था | विशेषण व्यवस्था | क्रिया व्यवस्था | काल संरचना

संज्ञा तथा कारक व्यवस्था

- सभी प्रतिपादिक 'अकरांत' और स्वरांत होने लगे।
- निर्विभक्तिक या लुप्तविभक्तिक के प्रयोग बढ़ गए।
- विभक्तियों और परसर्गों दोनों के साथ-साथ प्रयोग भी होने लगे थे। जैसे-'युवराजन्हि मांझ तान्हि केरो पुत्र'

अवहट्ठ में परसर्गों की संख्या बढ़ गई तथा निम्न परासर्ग पाए जाते हैं।

कर्त्ता-ने	अधिकरण-मांझ, महिं
कर्म-केहि, केहिं	सम्प्रदान-केहि, लागि
अपादान-से, सउं	

- अपभ्रंश में प्रयोग होने वाला 'हिं' विभक्ति अवहट्ठ में 'हि' हो गया। जैसे- मणहिं-मणहि
- डॉ. तगारे के अनुसार कर्त्ता की 'ए' विभक्ति इस भाषा की प्रमुख विशेषता है।

लिंग: अपभ्रंश की तरह अवहट्ठ में भी पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दो ही लिंग थे।

वचन: इसमें प्रमुख रूप से दो वचन मिलते हैं, द्विवचन का लोप हो गया तथा संज्ञा पदों के बहुवचन के लिए 'न्ह' या 'न्हि' परसर्ग का प्रयोग होता है। जैसे- 'हाथन्ह'

सर्वनाम: अवहट्ठ भाषा में कई नए सर्वनाम का प्रयोग दिखाई देता है जैसे -

उत्तम पुरुष - मैं, हौं, मेरा
मध्यम पुरुष - तुम, तुम्ह, तुम्हार
अन्य पुरुष - वह, अन्य

विशेषण: कृदंतीय विशेषणों के विकास के साथ-साथ विशेष्य के लिंग वचन के अनुसार परिवर्तित होने लगे थे संख्या वाचक विशेषण जैसे- सात-दस तथा सार्वनामिक विशेषण- जैसे- अइस, ऐसो का प्रयोग होने लगा था।

क्रिया व्यवस्था: कृदंतों के सहारे क्रिया निर्माण की परम्परा आरंभ हो गई थी तथा इसमें धातु रूप- चल, उठ तथा भूतकालिक कृदंत - मेल, कहल का प्रयोग होने लगा।

- प्रेरणार्थक क्रिया के रूप में 'पैढाव' तथा सहायक क्रिया का रूप है, 'छ', 'रह' प्रयोग में आने लगे।

काल व्यवस्था

तीनों कालों में निम्न स्वरूप विकसित हुए।

- वर्तमान काल - जात, करत, करन्ता, करन्ते
- भूत काल - इससे 'ल' रूप चलल का प्रयोग
- भविष्य काल - 'ब' रूप जैसे - खाइब तथा 'ह' रूप करहि का प्रयोग होने लगा था। इस प्रकार अवहट्ठ की व्याकरणिक स्वरूप अपभ्रंश और हिंदी के बीच की अवस्था है जिसमें दो अतिरिक्त स्वर 'ए' और 'औ' का प्रयोग होने लगा तथा स्त्रीलिंग शब्द 'आकारांत' होने लगे थे, जैसे-शिक्षा-सीख

प्र. अपभ्रंश और प्रारंभिक हिन्दी के व्याकरणीक स्वरूप में प्रमुख अंतर (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: अपभ्रंश और प्राम्भिक हिंदी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए दोनों के बीच व्याकरण के स्तर पर अंतर स्पष्ट करना है।

उत्तर: अपनी व्याकरणिक विशेषताओं के कारण ही आरम्भिक हिन्दी की वियोगात्मक प्रक्रिया आगे बढ़ी है। नए-नए व्याकरणिक प्रत्यय, विशेषत: परसर्ग और क्रिदंतीय रूप विकसित हुए है। बहुत थोड़े सविभक्तिक प्रयोग हिन्दी में मिलते हैं। रचना की दृष्टि से संस्कृत, पालि, प्राकृत भाषाएँ योगात्मक थी। नियोगात्मक स्पष्ट रूप भी अपभ्रंश से प्रारम्भ हुई और आरम्भिक हिन्दी बहुत हद तक नियोगात्मक हो गयी।

- अपभ्रंश और प्रारंभिक हिन्दी के शब्दभंडार में विदेशी शब्दों की दृष्टि से अंतर मिलता है। अपभ्रंश में अरबी, फारसी एवं तुर्की के शब्दों की संख्या 100 से अधिक नहीं थी, किन्तु हिन्दी में इस काल में मुसलमानों के आ जाने एवं उनके शासन के कारण इन तीनों ही भाषाओं से प्रयाप्त शब्द आ गए। विदेशी शब्द प्राय: प्रथम वर्ग में आते हैं उसके बाद मध्य वर्ग में और अंत में निम्न वर्ग में आते हैं।
- प्रारंभिक हिन्दी में संस्कृत, पाली एवं प्राकृत की तुलना में दो ही लिंग (स्त्रीलिंग और पुलिंग) रह गए। नपुंसक लिंग खत्म हो गया। वचन की संख्या भी मात्र दो रह गयी- एकवचन और बहुवचन।
- प्रारंभिक हिन्दी में अधिकतम चार कारक रूप प्राप्त होते हैं। यहां रूप द्योतन के लिए परसर्गों का प्रयोग आवश्यक हो गया। आधुनिक हिन्दी में तत्सम या तद्भव संज्ञापद से संस्कृत की प्रथमा विभक्ति लुप्त हो गयी है; किन्तु पुरानी हिन्दी में 'उ' विभक्ति के रूप में वर्त्तमान है। 'हि' का प्रयोग मुख्यत: बहुवचन के लिए प्राय: सभी कारकों में होता है। लेकिन बहुत थोड़े सविभक्तिक प्रयोग मिलते है। प्राय: निर्विभक्तिक रूप बिना कारकीय चिह्न के सभी कारकों के अर्थ में प्राप्त होते हैं।
- प्रारंभिक हिन्दी में अपभ्रंश से विकसित क्रिया-विशेषण विशेष रूप से पाये जाते हैं।
- प्रारंभिक हिन्दी में अपभ्रंश के पुरुषवाची सर्वनामों में किंचित उच्चारण भेद आवश्य हो गया है किन्तु उनकी मूल प्रकृति की समरूपता सुरक्षित है।
- उत्तमपुरुष में 'मैं' की अपेक्षा 'हौ' व्यापक है; बाद में मइ, मैं, मुज्यु, मोंहि, मोर, मेरा आता है। उसके बाद हम, हमार, म्हारो, तोर, तेरा आदि की ध्वनि व्यवस्था है। मध्यम पुरुष में तुम, तुम्ह, तुझ, तुम्हार, तिहारो आदि तथा अन्य पुरुष में सो, से, सेइ, ताहि, ते, वे, वै; संकेतवाचक वह, ऊ, ओह, तासु, ताहि, उस; प्रश्नसूचक ज, जो, जेइ, जिन्ह, जिस तथा अनिश्चयवाचक में कोऊ, कोई, किसी आदि का प्रयोग मिलता है।
- प्रारंभिक हिन्दी में विशेषण के रूपों के अंत में अती प्रत्यय प्राय: मिलता है।
- क्रियारूपों की जटिलता और लकारों की विविधरूपता अपभ्रंश में ही हो गयी थी। हिन्दी में आते-आते मुख्यतया चार लकार रह गए-सामान्य लट् (वर्त्तमान लट्), लंङ्ग (भूतकाल), लृट् (भविष्यत् काल) तथा आज्ञार्थ आदि। सहायक क्रियायों एवं संयुक्त पूर्वकालिक क्रियायों का रूप स्थिर हो गया था।
- प्रारंभिक हिन्दी में भूतकालिक क्रिया का हत्तो, हत्ती और वर्तमानकालिक क्रिया का गया, गयी, गयो रूप मिलता है। विधि प्रेरणार्थक और कर्मवाच्य में जहाँ संस्कृत में 'ग' आता है वहीं पुरानी हिन्दी में 'ज' या 'ज्ज' आता है। यथा दीज्जै।
- प्रारम्भिक हिन्दी में मानक हिन्दी की तरह पदक्रम निश्चित नहीं था; जैसे- भनहिं विद्यापति, कहै कबीर सुनौ भाई साधौ, बंदौ गुरुपद पदुम परागा। लेकिन दक्खिनी हिन्दी की गद्य रचना में पदक्रम,संज्ञा-क्रिया-कर्म निश्चित हुआ मिलता है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी को एक क्षीण रेखा अलग करती है। स्वर संकोचन की प्रवृति अवहट्ट में प्रारम्भ हो गयी थी। अपभ्रंश में किज्जिय, करिजिय आदि रूप मिलते हैं जिनके इय का विकास इए (कीजै) एवं इये का विकास कीजिये (मानक हिन्दी) रूप में मिलता है।

प्र. आरम्भिक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएं
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: हिन्दी में प्राय: ध्वनियां वही थीं जो अपभ्रंश-अवहट्ठ में मिलती थीं, किन्तु आरंभिक हिन्दी में कुछ नई ध्वनियों का भी विकास हुआ। अपभ्रंश में संयुक्त स्वर नहीं थे।

हिन्दी में ऐ, औ, आई, आउ, इया आदि संयुक्त स्वर इस काल में प्रयुक्त होने लगे।

- उत्क्षिप्त व्यंजन ड़, ढ़ हिन्दी की अपनी ध्वनियां हैं।
- कुछ व्यंजनों के महाप्राण रूप विकसित हो गए; जैसे- न्ह, म्ह, ल्ह आदि।
- अपभ्रंश तथा आदिकालीन हिन्दी के शब्दभंडार में विदेशी शब्दों की दृष्टि से अंतर मिलता है।
- अपभ्रंश में अरबी-फारसी-तुर्की शब्दों की संख्या सौ से अधिक नहीं थी, किन्तु हिन्दी के इस काल में मुसलमानों के बस जाने एवं उनके शासन के कारण इन तीनों ही भाषाओं से पर्याप्त शब्द आ गए।
- ऋ हिन्दी में तत्सम शब्दों में ही लिखी जाती है, किन्तु इसका उच्चारण 'रि' की तरह तथा गुजराती में 'रू' की तरह होता है।
- ऊष्म वर्ण 'ष' लेखन में रहा, किन्तु उच्चारण में यह 'श' की तरह ही उच्चरित होता है। य का ज में, व का ब में रूपांतरण दिखाई पड़ता है।
- विदेशी भाषाओं के प्रभाव से क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियां व्यवहृत होने लगी।
- आदि स्वर लोप (अभ्यंतर >भीतर), मध्य स्वर लोप (चल्ना, कम्रा) एवं अन्त्य स्वर लोप (राम्, अब्, घर्) की प्रवृत्ति प्रारंभिक हिन्दी में मिलती है।
- आरंभिक हिन्दी में अपभ्रंश के द्वित्व की जगह केवल एक रह गया और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घता आ गई।
  जैसे: नि:श्वास > निस्सास > नीसास
  उच्छवास > उस्साह > ऊसास
- आरंभिक हिन्दी में दो ही लिंग रह गए। नपुंसक लिंग खत्म हो गया।
- वचन की संख्या भी मात्र दो रह गई- एकवचन और बहुवचन।
- आरंभिक हिन्दी में अधिकतम चार कारक रूप प्राप्त होते हैं।

परिचय: आरंभिक हिन्दी एक समूह-भाषा है जिसमें आज के हिन्दी प्रदेश की 18 बोलियां समाहित हैं। ये अपभ्रंश/अवहट्ठ के विभिन्न रूपों से निष्पन्न हैं। आरंभिक हिन्दी का काल मुख्यत: 1000 ई. से 1800 ई. तक माना जाता है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(प्रथम प्रश्न-पत्र)

खण्ड 'ख' (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा

प्र. रामचन्द्र शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की एक लम्बी परम्परा रही है जो अनौपचारिक इतिहास लेखन जिसमें भक्तमाल, कविमाल, कालिदास हजारा के योगदान से आरंभ हुई थी तथा औपचारिक इतिहास लेखन जिसमें 'गार्स त तासी' शिव सिंह सेंगर जॉर्ज ग्रियर्सन तथा मिश्रबंधु के योगदान से विकसित हुई।

परन्तु हिन्दी साहित्य लेखन की इस सदीर्घ परंपरा में एक मुख्य बदलाव आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन को माना जाता है इसलिए इस परम्परा का केन्द्र बिंदु आचार्य शुक्ल बन जाते हैं।

- आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख विशेषता यह है की उन्होंने इसे जनता की चित्रवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब माना है।

विशेषता

स्पष्ट और विकसित लेखन: आचार्य शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि पूर्णत: स्पष्ट और परिपक्व है क्योंकि उनका मानना है की प्रत्येक देश का साहित्य जनता की चित्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब है तथा चित्रवृत्ति के बदलने से साहित्य भी बदल जाता है तथा इनके बदलने के पर्याप्त राजनीतिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक कारण होते हैं।

प्रत्यक्षवादी इतिहास बोध: शुक्ल जी ने इतिहास के लेखन में प्रत्यक्षवादी या विधेयवादी सिद्धांत को अपनाया है जिसके अंतर्गत किसी कार्य की व्याख्या निश्चित व वस्तुनिष्ठ कारणों के आधार पर किया जाता है।

शुक्ल जी ने जाति, वातावरण व रचना का क्षण तत्वों के माध्यम से साहित्येतिहास लेखन किया है तथा भक्ति आंदोलन का उद्‌भव इसी आधार पर इस्लामी आक्रमण का आधार बनते है।

शुक्ल जी ने अपने दृष्टिकोण के द्वारा वर्षो से चली आ रही हिन्दी साहित्य की इस समस्या का समाधान कर 900 वर्षो के साहित्य की चार कालों में विभाजित कर उसका नामकरण किया व जो निम्नवत हैं-

वीरगाथा काल	-	संख्या 1050-1375
भक्तिकाल	-	संख्या 1375-1700
रीतिकाल	-	संख्या 1700-1900
आधुनिक काल	-	संख्या 1900-अघतन

- इन विभाजनों के साथ-साथ उन्होंने विविध कालों का भी वैज्ञानिक विभाजन किया है। जैसे-

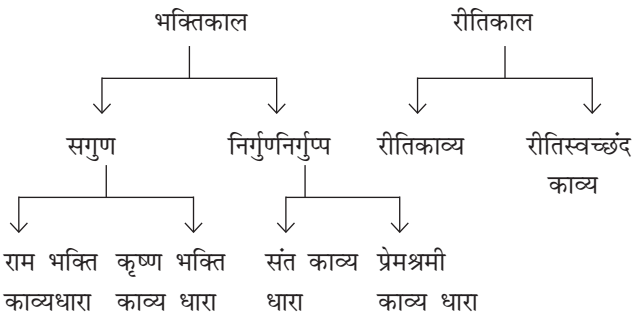

- **कविता सम्प्रेषण बाधक तत्वों की पहचान:** शुक्ल जी ने कविता के सम्प्रेषण को बाधित करने वाले प्रतीकों जैसे अलंकार, रहस्यवाद प्रतिकवाद, विलष्टता के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग तथा बुद्धिप्रेरित वक्रता का विरोध किया है।
- **रचना का मूल्यांकन:** शुक्ल जी ने अनौपचारिक इतिहास लेखन जिसमें सिर्फ रचनाकारों के नाम तथा परिचय प्रदान किया गया था उसके विपरीत रचनाकारों की रचना का मूल्यांकन करते थे।
- यही कारण है की वह तुलसी को हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं तथा कबीर को कवि की श्रेणी से बाहर करते हैं हालांकि द्विवेदी जी ने कबीर को उत्कृष्ट कोटि का कवि माना है। शुक्ल जी ने रचना का वास्तविक मूल्यांकन गद्य को माना है।
- लेखन की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है की उन्होंने रस की लोकमंगलवादी व्याख्या प्रस्तुत की तथा पारम्परिक रसवादी तथा आधुनिक समाजनिष्ठ दृष्टि को छोड़ दिया है। शुक्ल जी ने इसी कारण 'तुलसी को लोकमंगल' का कवि तथा सूरदास को लोकरंजन का कवि माना है।
- इस प्रकार स्पष्ट है की शुक्ल जी ने अपने साहित्येतिहास लेखन में गार्सा द तासी, शिव सेंगर की परम्परा को आगे बढ़ाया तथा आगे चलकर हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी, जैसे मूर्धन्य लेखकों के साहित्येतिहास का आधार तैयार किया जो आगे रामकुमार वर्मा, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा और परिमार्जित तथा परिष्कृत हो गई।

प्र. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य के इतिहास लेखन की दृष्टि
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा की चर्चा करते हुए साहित्य के इतिहास लेखन के प्रति हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जो अपने विचार प्रकट किए हैं, उसका मूल्यांकन करना है।

उत्तर: हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का पहला प्रयास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सा-द-तासी ने किया। उन्होंने फ्रांसीसी भाषा में "इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी" नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें हिन्दी और उर्दू के अनेक कवियों का परिचय वर्णक्रमानुसार दिया गया है। पर इसमें लेखक ने अपने को रचनाकार के जीवनवृत्त और रचनाओं के परिचय तक ही सीमित रखा है। इसमें काल-विभाजन, युगीन-प्रवृत्तियों और परंपरा के विवेचन का कोई प्रयास नहीं किया गया है। इसलिए इस ग्रंथ को "इतिहास" की अपेक्षा "वृत्त संग्रह" मानना अधिक उपयुक्त है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और इतिहास-लेखन

आचाग्र रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय जहां युगीन परिस्थितियों पर बल दिया वहां आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा को इतिहास लेखन का आधार बनाया। उन्होंने रामचंद्र शुक्ल के युग रुचिवादी दृष्टिकोण के समानान्तर अपने परम्परापरक दृष्टिकोण को स्थापित करके हिंदी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक व्यापक और संतुलित इतिहास-दर्शन की भूमिका तैयार की।

दरअसल परंपरा और युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन से संतुलित इतिहास का निर्माण हो सकता है, अत: यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के मत एक दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर राम विलास शर्मा तक इतिहास लेखन की एक विकासशील परंपरा देखने को मिलती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जहां युगीन परिस्थितियों पर बल दिया है, वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परंपरा पर अपना मूल्यांकन आधारित किया है। पर आचार्य द्विवेदी की इतिहास दृष्टि आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण की विरोधी नहीं बल्कि पूरक है।

भविष्य के इतिहासकार दोनों इतिहास दृष्टियों का एक साथ उपयोग कर संतुलित इतिहास लिख सकते हैं और साहित्य की विकासशील परंपरा और प्रवृत्ति का पुनर्मूल्यांकन कर सकते हैं। राम विलास शर्मा ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के संकेत सूत्रों को अपनी दृष्टि से पल्लवित और सुनियोजित किया है।

निष्कर्ष:

वस्तुत: हिन्दी-साहित्य के जातीय रूप और विशेषताओं के विकास का प्रश्न उनके इतिहास लेखन में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। इस दृष्टि से उन्होंने हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखन को नयी जमीन और नयी दिशा प्रदान की है।

प्र. हिन्दी में साहित्येतिहास लेखन की परंपरा और महत्त्व
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: आयार्च शुक्ल के अनुसार ''प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चितवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।''

साहित्य का इतिहास न तो अतीत की अंधपूजा है और न ही वर्तमान का तिरस्कार, न यह महान प्रतिभाओं और रचनाओं का स्तुतिगायन है और न ही तिथियों और तथ्यों का संग्रह मात्र। साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन और मूल्यांकन है। साहित्य की प्रवृत्ति के निर्धारण में एक ओर जहां अंग्रेज इतिहासकार तेन के अनुसार जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय सामाजिक वातावरण एवं साहित्यिक सामयिक परिस्थितियों की अहम भूमिका है वहीं दूसरी ओर रचनाकर के जीवन-दर्शन और प्रतिभा का भी कम महत्व नहीं है। बदलते परिप्रेक्ष्य में इतिहास-लेखन का दृष्टिकोण भी बदलता है इसलिए साहित्य वही रहने पर भी साहित्य का नया-नया इतिहास लिखा जाता है।

साहित्य में इतिहास-लेखन की परंपरा को दो भागों में बांट सकते हैं- आचार्य शुक्ल से पूर्व का इतिहास-लेखन, शुक्ल और शुक्लोत्तर इतिहास-लेखन।

आचार्य शुक्ल से पूर्व छ: इतिहासनुमा पुस्तकें प्रकाशित हुईं-

- गार्सा द तासी: इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐंन्दुई ऐं ऐन्दुस्ताकी
- शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज'
- जार्ज ग्रियर्सन कृत 'द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नादर्न हिन्दुस्तान'
- मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद'
- ग्रीव्ज कृत 'ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर'
- पादरी एफ. ई. के कृत 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर'
- आचार्य शुक्ल और उनके बाद की प्रमुख इतिहास की पुस्तकें हैं:-
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका
- डॉ. रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक विकास
- नागरी प्रचारिणी सभा- 'हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (संपादित)
- डॉ. नगेंद्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास (संपादित)
- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी साहित्य का अतीत (दो खंडों में)
- गणपति चन्द्र गुप्त- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (दो खंडों में)
- पं. सुधाकर पांडेय एवं डॉ. कुसमाकर पांडेय- हिन्दी साहित्य चिंतन (संपादित)

साहित्य के इतिहास-लेखन में जिन स्रोतों की सहायता ली जाती है, वे इस प्रकार हैं-

- साहित्यकारों की रचनाएं
- उक्त रचनाओं के परिचयात्मक ग्रंथ
- साहित्य-ग्रंथों की टीका या आलोचनात्मक ग्रंथ

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

खण्ड `क' (पद्य साहित्य)

कबीर

प्र. ''कबीर वाणी के डिक्टेरर हैं।'' इस कथन के आलोक में कबीर की अभिव्यंजना शैली पर विचार कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: कबीर भक्ति काल के निर्गुण मार्गी शाखा के प्रमुख व्यक्तित्व हैं तथा उनके बारे में यह माना गया है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे इसके बावजूद उनकी कविता तथा काव्य में जो भाषाई चमत्कार दिखाई देता है वह आलोचकों को हैरान करती है इसलिए जहां रामचन्द्र शुक्ल यह कहते हैं कि उनकी भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी उनकी उक्तियां कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार पैदा करती है तो दूसरी तरफ आचार्य द्विवेदी उनकी वाणी का मूल्यांकन करते हुए उन्हें वाणी का डिक्टेटर कहते हैं।

- कबीर दास जी ने जिस प्रकार से स्वयं यह उद्घोषणा कि थी कि 'मसि कागद छुओं नहीं कलम गहयो नहीं हाथ' उसके बाद उन्होंने जिस प्रकार से लोकभाषा का प्रयोग किया तथा संदर्भ विशेष में सटीक शब्दों का प्रयोग किया वह उन्हें वाणी का डिक्टेटर बनाता है। उनका डिक्टेटरपना इस बात से झलकता है कि वह बिना कुछ सोचे-समझे किसी से डरे आत्मविश्वास के साथ मौलवियों पर कटाक्ष करते समय उर्दू-फारसी के शब्दों की बाढ़ ला देते है तो दूसरी तरफ पंडितों पर कटाक्ष करते समय तत्सम-तद्भव शब्दों का प्रयोग उसी विद्धता से करते है।
  जैसे- मैं तो कूता राम का, मुतिया मेरा नाम
  गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाऊं
- यहां 'मुतिया' शब्द का प्रयोग कबीर ही कर सकते है क्योंकि वह अभिजात्यवादी सोच से बाहर बिल्कुल मदेस बोली को अपनाते हैं।
- उनकी डिक्टेटरपना का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण है उनकी व्यंग्यात्मक शैली जिसमें वह ऐसा व्यंग्य करते है जिसमें सुनने वाला केवल तिलमिला कर रह जाता है।
- पंडितों पर व्यंग्य करते हुए जब वह कहते हैं कि 'मूंड मूड़ाए हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय' तथा मौलवियों पर व्यंग्य करते हुए जब वह यह कहते है कि "कॉकर पाथर जोरि के, मस्जिद लइ बनाय, ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय" तब अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा कोई रास्ता नहीं पाता है।
- कबीर के ईश्वर मिलन की कविता में सूफियाना भाव तथा प्रतीकों के माध्यम से अपनी बातों को कहने की शैली भी उन्हें भाषा का डिक्टेटर साबित करती है जब कबीर कहते हैं-
  तलफै बिन बालम मोर जिया
  दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया या फिर
  चलती चाकी देख कर, दिया कबीरा रोय
- तो वे विद्यापति, सूर और बिहारी की भाषिक क्षमताओं को चुनौती पेश करते है। कबीर वाणी के डिक्टेटर इसलिए भी कहलाते हैं कि उन्होंने संस्कृत भाषा के स्थान पर लोकसभा का प्रयोग किया तथा पंचमेल खिचड़ी भाषा का ईजाद किया। वो साफ-साफ कहते हैं कि 'जिन तुम जान्यौं गीति है, वह निज ब्रह्म विचार' इसलिए उन्होंने संस्कृत को कूपजल तथा भाषा को बहता नीर बताया है।
- कबीर वस्तुत: बिम्ब एवं अलंकारों के मामलों में भी डिक्टेटर हैं वह दृश्य बिम्ब (जल में कुल, कुम्भ में जल) तथा चमक अलंकार (माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर) का प्रयोग करते हैं तो दूसरी तरफ वे उल्टबांसी का जबरदस्त प्रयोग करते हैं, जो प्रतीकात्मक या संघा भाषा है। जैसे- नैया विच नदिया डूबति जाय।
- इस प्रकार कबीर अपनी मनमर्जी शैली, व्यंग्यात्मक लहजे तथा लोकभाषा के सटीक प्रयोग के कारण वाणी के डिक्टेटर कहलाते हैं इसलिए द्विवेदी जी ने कहा है कि- भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है-'वन गया है सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर'। भाषा खुद कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को मनाहिं कर सके।"

प्र. कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूनें घर का पाहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव॥
कबीर चित चमंकिया, यहूं दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथू घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ॥
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रसंग: प्रस्तुत पद्यांश कबीरदास द्वारा विरचित है, जो कबीर ग्रंथावली में संग्रहित है। कबीरदास जी हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

प्रस्तुत पद्यांश साखी के 'सुमिरण कौ अंग' से उधृत है। संत कबीर ने ईश्वर या आराध्य के नाम स्मरण को बहुत महत्व दिया है। इसी नाम-स्मरण की महिमा का वर्णन 'सुमिरण कौ अंग' में किया गया है।

व्याख्या: कबीरदास जी प्रेम के पुजारी थे, वह भक्ति को भी प्रेम से जोड़कर देखते थे। उनका मानना था कि एक तरफ सभी प्रकार की विद्या प्राप्त की जाए, किंतु प्रेम के बिना वह सब अधूरी है। पंडित वही व्यक्ति कहलाता है जो प्रेम करना जानता है।

कबीर कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने प्रेम को चखा नहीं, और चख कर स्वाद नहीं लिया, वह उस अतिथि के समान है जो सूने, निर्जन घर में जैसा आता है, वैसा ही चला भी जाता है, कुछ प्राप्त नहीं कर पाता।

इस सन्दर्भ में कबीर कहते हैं कि चारों तरफ विषय विकारों की अग्नि लगी है। संसार विषय वासना (काम, क्रोध, मद, मोह माया, मात्सर्य) की अग्नि में जल रहा है। हरी सुमिरण रूपी घड़े (घड़े के जल) से तुरंत इसे बुझा लेना चाहिए।

कबीर की इस साखी का मूल भाव है की समस्त संसार विषय वासना रूपी संताप से पीड़ित है जिसे केवल हरी के नाम के सुमिरण से ही दूर किया जा सकता है।

हरी नाम के नाम से मन चमत्कृत हो गया है। चमत्कृत से आशय है की वह चौकन्ना हो गया है। प्रस्तुत साखी में सांगरूपक अलंकार की व्यंजना हुई है।

विशेष

- कबीर दास ने प्रेम को सर्वोच्य माना है।
- प्रभु (हरी) की अराधना करने से मनुष्य सभी प्रकारों के विकारों से मुक्त हो जाता है।

प्र. कबीरदास की रचना-संसार में निहित समाज-चिंता पर प्रकाश डालिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: कबीर दास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना जागृत करने का जो प्रयास किया है, साथ ही सामाजिक विडंबनाओं पर किस प्रकार चोट किया है, उसका उल्लेख करना है।

उत्तर: कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारण ा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुत: कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे। परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे।

उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करें, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था।

वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'' वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है-

''सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।''

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णत: तैयार थे-

''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।'

कबीर के समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में साफ दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति-भेद, वर्ण-भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है।